विषय - मुक्ति के पूर्व आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है, या शेष रहता है ?

भूमिका -- यहां दो पक्ष हैं।

पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्वपक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)

इन दोनों पक्षों में सीधा टकराव है। जब इन दोनों में टकराव है, तो ये दोनों पक्ष तो सत्य नहीं हो सकते। इन दोनों में से कौन सा पक्ष सत्य है, इसके निर्णय के लिए प्रमाण तर्क आदि का सहयोग लेना होगा।

जब दोनों पक्षों वाले व्यक्तियों के शब्द प्रमाण भी समान अर्थात् वेद और आर्षग्रन्थ हों, फिर भी उनमें मतभेद हो, तो इसका अर्थ यह हुआ, कि शब्द प्रमाण का अर्थ समझने में, 2 में से एक व्यक्ति को अवश्य ही भ्रांति है।

परंतु ऐसा देखा जाता है कि किसी व्यक्ति को जिस समय भ्रांति होती है, उस समय वह इस बात को प्रायः स्वीकार नहीं करता, कि मुझे भ्रांति है। वह अपने पक्ष को ही निश्चित रूप से सत्य मानता है। ऐसी स्थिति में निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है, कि 2 में से कौन सा पक्ष ठीक है? एक ही शब्द प्रमाण में दोनों व्यक्तियों को अलग-अलग अर्थ दिखाई देता है। दोनों को उस प्रमाण में अपना किया हुआ अर्थ ही सही दिखता है।

तो ऐसी स्थिति में शब्द प्रमाण भी कुछ देर के लिए साध्य बन जाता है। तब शब्द प्रमाण को कुछ समय के लिए छोड़कर, निर्णय का आधार अन्य अनुमान आदि प्रमाण, पंचावयव या तर्क आदि साधन होते हैं। क्योंकि न्यायदर्शन के अनुसार सभी प्रमाणों का निर्णय एक ही होता है।इसलिए इन अन्य अनुमान आदि प्रमाणों एवं तर्क आदि की सहायता से, उक्त दो पक्ष वालों में से, जिसका भी पक्ष सत्य सिद्ध होता है, उसी व्यक्ति का किया हुआ अर्थ, उस शब्द प्रमाण का, सही अर्थ माना जाता है। और जो पक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों से खंडित हो जाता है, उस व्यक्ति का किया हुआ अर्थ, उस शब्द प्रमाण का गलत अर्थ माना जाता है।

परंतु इतना सब होने पर भी सत्य को समझने के लिए कुछ अन्य कारण भी आवश्यक होते हैं।

पहला कारण - जिस विषय पर चर्चा चल रही है, उस विषय पर दोनों पक्षवालों का, शास्त्रों का अध्ययन खूब अच्छा होना चाहिए।

दूसरा कारण - बातचीत करने वालों का बौद्धिक स्तर भी बहुत ऊंचा होना चाहिए, जिससे कि वे दोनों व्यक्ति उस सूक्ष्म विषय को समझने में समर्थ हो सकें।

तीसरा कारण - मन की पवित्रता होनी चाहिए। क्योंकि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोक्तधर्मविषय में पृष्ठ 139 पर महर्षि दयानंद जी ने लिखा है, कि "पवित्र मन से सत्य ज्ञान होता है।"

इसलिए इन तीन कारणों का भी हमें ध्यान रखना होगा, तभी सत्य असत्य का कुछ ठीक प्रकार से निर्णय हो पाएगा, अन्यथा नहीं।

आप कितनी भी चर्चाएं कर लें, यदि ये तीन कारण आप में नहीं हैं। अथवा दो कारण आपमें होने पर भी, यदि तीसरा कारण (मन की पवित्रता) नहीं है, तो भी सत्य समझ में नहीं आएगा। अतः इसका उपाय है, ईश्वर उपासना से अपने मन की पवित्रता को बढ़ाना।

अब इस विषय पर हम अपने पक्ष =

(मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं।) में प्रमाण, तर्क आदि प्रस्तुत करते हैं।

प्रमाण (1) - महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने ऋग्वेद के भाष्य

में मंडल 1, सूक्त 24 मंत्र 2 के भाष्य में संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखा है। उनके अनुसार ---

संस्कृत भाषा का भावार्थ -- अयमेव मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पापपुण्यतुल्यतया पितरि मातरि च मनुष्यजन्म कारयतीति ।।2।।

हिन्दी भाषा का भावार्थ --

वही मोक्ष पदवी को पहुंचे हुए जीवों का भी महाकल्प के अंत में फिर पाप पुण्य की तुल्यता से पिता माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्य जन्म धारण करता है।

इस मंत्र के दोनों भाषाओं के भावार्थ से यह बिल्कुल स्पष्ट है, कि जो आत्मा मुक्ति से वापस संसार में लौट रहा है, ईश्वर उसके पाप पुण्य की तुल्यता करके उसे पहला जन्म मनुष्य का देता है, मुफ्त में नहीं। आप यहां देख सकते हैं कि पाप पुण्य की तुल्यता तो तभी संभव है, जब उस मुक्तात्मा के पाप पुण्य शेष हों। यदि सारे कर्म समाप्त हो गये होते, तो "पाप पुण्य की तुल्यता" ये शब्द कहना ही व्यर्थ है। इससे सिद्ध होता है कि उसके सारे कर्म समाप्त नहीं हुए, बल्कि उसके पाप पुण्य बचे हुए हैं।

प्रमाण (2) - यदि पहला पक्ष (पूर्वपक्ष) स्वीकार किया जाए, कि "मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। और मुक्ति से लौट कर बिना कर्म के ही, मुफ्त में पहला शरीर मिलता है," तो इसमें अनेक दोष आते हैं।

पहला दोष - कृतहानि। जब आत्मा पांच क्लेश दग्धबीज करके मोक्ष में जाएगा, तो उसके अनेक जन्मों में संगृहीत जो संचित कर्म शेष हैं, फल भोगे बिना ही उन कर्मों का नाश मानना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में कर्म करने पर भी उनका फल नहीं मिला, यह दोष आएगा। इसे दार्शनिक भाषा में कृतहानि दोष के नाम से कहा जाता है।

दूसरा दोष - अकृताभ्यागम। जब वह आत्मा मुक्ति से वापस लौटेगा, तो पूर्वपक्ष की मान्यता के अनुसार, उसके पास शेष कर्म तो हैं नहीं। तब यह मानना पड़ेगा, कि मोक्ष से लौटने पर, बिना ही कर्मों के, मुफ्त में ही उसे ईश्वर द्वारा शरीर दिया जाएगा। तो बिना कर्म किए ही फल मिलना, यह दोष आएगा। दार्शनिक भाषा में यह अकृताभ्यागम दोष कहलाता है।

तीसरा दोष -- पूर्वपक्ष में (कृतहानि तथा अकृताभ्यागम) ये दोनों दोष आने के कारण ईश्वर को ये दोनों काम करने पड़ेंगे। अर्थात् *कृत कर्म का फल न देना, और बिना कर्म किए फल देना, ये दोनों बातें अन्यायपूर्ण हैं। इस प्रकार से ईश्वर अन्यायकारी बनेगा। ईश्वर को अन्यायकारी मानना, यह वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध है। इसलिए पूर्वपक्ष ठीक नहीं है।

यदि दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाये, कि "मोक्ष में जाने से पहले कुछ कर्म बचे रहेंगे।" तो इस पक्ष में ये तीनों ही दोष नहीं आएंगे। जो कर्म बचे रहेंगे, वे जमा रहेंगे। जब आत्मा मुक्ति से

वापस लौटेगा, तो उन्हीं बचे हुए कर्मों के आधार पर उसको पहला शरीर या जन्म दिया जाएगा। इस प्रकार से न तो कृतहानि दोष हुआ। और न ही अकृताभ्यागम दोष हुआ। और इस पक्ष में ईश्वर अन्यायकारी भी नहीं बनेगा, बल्कि न्यायकारी सिद्ध होगा। इसलिए दूसरा पक्ष ही सत्य है। उसी को मानना ठीक है।

* मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है। इस बात की पंचावयव से सिद्धि *

(क) - साधर्म्य से।

१- मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है।

२- कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष न होने से।जहां-जहां कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष नहीं होता, वहां वहां कर्माशय शेष रहता है।

३- जैसे किसी कार्यालय में जहां कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष नहीं होता, वहाँ कर्मचारी का कर्माशय शेष रहता है। (उसे कुछ समय बाद वेतन दे दिया जाता है।)

४- जैसे किसी कार्यालय में कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष नहीं होता, उसी के समान मुक्ति में जाने वाले आत्मा की कर्मफल व्यवस्था में भी कृतहानि दोष नहीं होता।

५- इसलिए कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष न होने से, मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है।

(ख) - वैधर्म्य से।

१- मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है।

२- कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष न होने से।जहां-जहां कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष होता है, वहां वहां कर्माशय शेष नहीं रहता।

३- जैसे किसी कार्यालय में जहां कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष होता है, वहां पर कर्मचारी का कर्माशय शेष नहीं रहता। (अर्थात् बेईमान अधिकारी द्वारा उचित तिथि पर वेतन न देने पर, पिछले मास की मेहनत खत्म (व्यर्थ) हो जाती है। और कुछ समय बाद भी उस कर्मचारी को वेतन नहीं दिया जाता।)

४- जैसे किसी कार्यालय में कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष होता है। वैसा मुक्ति में जाने वाले आत्मा की कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष नहीं होता।

५- इसलिए कर्मफल व्यवस्था में कृतहानि दोष न होने से, मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है।

मुक्ति से लौटने पर फल संचित कर्मों से मिलता है, बिना कर्म के नहीं। इस बात की पंचावयव से सिद्धि

(क) - साधर्म्य से।

१. मुक्ति से लौटने पर फल संचित कर्मों से मिलता है, बिना कर्म के नहीं।

२. फलदाता न्यायकारी होने से। जहां जहां फलदाता न्यायकारी होता है, वहां वहां फल संचित कर्मों से मिलता है।

३. जैसे किसी विद्यालय में। (जहाँ परीक्षा फलदाता न्यायकारी होता है, वहां फल संचित कर्मों से मिलता है। अर्थात् परीक्षा देना रूपी कर्म करने पर ही अंक रूपी फल मिलता है। बिना परीक्षा दिए नहीं।)

४. जैसे किसी विद्यालय में फलदाता न्यायकारी होता है। ऐसे ही मुक्ति से लौटने पर भी फलदाता न्यायकारी होता है।

५. इसलिए फलदाता न्यायकारी होने से, मुक्ति से लौटने पर फल संचित कर्मों से मिलता है, बिना कर्म के नहीं।

(ख) - वैधर्म्य से।

१. मुक्ति से लौटने पर फल संचित कर्मों से मिलता है, बिना कर्म के नहीं।

२. फलदाता न्यायकारी होने से। जहां जहां फलदाता अन्यायकारी होता है, वहां वहां फल संचित कर्मों से नहीं मिलता है। अर्थात् बिना कर्म किए भी मिलता है।

३. जैसे किसी विद्यालय में। (जहाँ परीक्षा फलदाता अन्यायकारी होता है, वहां फल संचित कर्मों के बिना भी मिलता है। अर्थात् पूरी परीक्षा न देने पर भी अन्याय से विद्यार्थी के अंक बढ़ा दिए जाते हैं।)

४. जैसे किसी विद्यालय में फलदाता अन्यायकारी होता है। ऐसे मुक्ति से लौटने पर फलदाता अन्यायकारी नहीं होता।

५. इसलिए फलदाता न्यायकारी होने से, मुक्ति से लौटने पर फल संचित कर्मों से मिलता है, बिना कर्म के नहीं।

क्रमशः ...

लेखक -
स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

मुक्ति के पूर्व आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है, या शेष रहता है ?

[पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्वपक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)]

प्रमाण (3)- न्याय दर्शन सूत्र 3/2/72. न अकृताभ्यागमात्।। में भी यह दूसरा दोष दिखाया है, अकृताभ्यागम।

जो व्यक्ति बिना कर्म के फल की प्राप्ति मानता है, उसके लिए वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि उसकी इस मान्यता का, प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द प्रमाण इन तीनों से विरोध होगा।

जैसे कि, बिना कर्म किए कोई सेठ अपने नौकर को वेतन नहीं देता। इससे पता चलता है कि नौकर को जो वेतन दिया जा रहा है यह कर्म का फल है, मुफ्त में नहीं। यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हुआ।

कोई व्यक्ति कम सुखी है, कोई अधिक सुखी है। कोई कम दुखी है, कोई अधिक दुखी है। इससे अनुमान प्रमाण से सिद्ध होता है कि यह कम अधिक सुख दुख होना, कर्मों का फल है, मुफ्त में नहीं।

और वेदों में तथा ऋषियों के ग्रंथों में बहुत से उपदेश लिखे हैं -- कि सत्य बोलो। इससे सुख मिलेगा। झूठ बोलोगे, तो दुख मिलेगा। यह शब्द प्रमाण से सिद्ध है, कि कर्मों के आधार पर फल मिलता है।

इस प्रकार से जो बिना कर्म के फल की प्राप्ति मानता है, उसका यह पक्ष इन तीनों प्रमाणों के विरुद्ध होने से ग़लत है।

प्रमाण (4) - न्याय दर्शन सूत्र 3/2/60 पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः।। में कहा है कि जो शरीर की उत्पत्ति होती है, वह पूर्वकृत कर्मों के आधार पर होती है, बिना कर्मों के शरीर की उत्पत्ति नहीं होती। तो जब आत्मा मुक्ति से लौटेगा, तब यदि बिना कर्म के उसे शरीर दिया जाएगा। तो यह बात इस सूत्र के भी विरुद्ध होने से ग़लत है।

प्रमाण (5) - न्याय दर्शन सूत्र 4/1/64. न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य।। इस सूत्र में कहा है कि जिस आत्मा के अविद्यादि पांच क्लेश समाप्त हो गए हैं, अब उसके कर्म पुनर्जन्म को उत्पन्न नहीं कर सकते। उसका मोक्ष हो जाएगा। मोक्ष प्राप्ति का यह नियम आर्ष शास्त्रों में अनेक स्थानों पर लिखा है। परंतु मोक्ष प्राप्ति से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाएंगे, ऐसी बात कहीं भी नहीं लिखी। जहां कहीं प्रतीत होती है, वह लोगों को भ्रांति है। क्योंकि जिस जिस भी शब्द प्रमाण का आप ऐसा अर्थ करेंगे कि, मोक्ष प्राप्ति से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाएंगे। वहाँ-वहाँ सब जगह पर कृतहानि तथा अकृताभ्यागम दोष आएंगे, और ईश्वर को भी अन्यायकारी मानना पड़ेगा। जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

इससे पता चलता है, कि उसके संचित कर्म हैं तो सही, परंतु वे अगला जन्म नहीं दे पाएंगे, क्योंकि सकाम कर्मों का फल भोगने के लिए जो अगला जन्म मिलेगा, उससे सुख दुख भोगने के लिए अविद्या आदि क्लेश अवश्य ही विद्यमान होने चाहिएँ। और इस समय अविद्या आदि क्लेश खत्म हो चुके हैं। इसलिए सकाम कर्म विद्यमान होते हुए भी, अगला जन्म नहीं दे पाएंगे। तो सिद्ध हुआ कि मोक्ष में जाने से पहले वे कर्म बचे हुए हैं।

इसी सूत्र के वात्स्यायन भाष्य में अंतिम वाक्य में लिखा है, सर्वाणि पूर्वकर्माणि ह्यन्ते जन्मनि विपच्यन्त इति।। इस वाक्य से लोगों को भ्रांति हुई, कि यहां सारे पूर्व कर्म अर्थात् सारे पूर्वसंचित कर्म, उस अंतिम जन्म में फल देने के लिए पक जाते हैं अर्थात सभी कर्म, फल दे देते हैं। अथवा बिना फल दिए नष्ट हो जाते हैं। ऐसा अर्थ करना, ऋषियों के विरुद्ध है। क्योंकि योग दर्शन 2/13 सूत्र के व्यास भाष्य में यह स्वीकार किया है कि मोक्ष से पहले कर्म बचे रहते हैं। यहां सारे पूर्वकर्म का अर्थ है सारे प्रारब्ध कर्म, न कि सारे संचित कर्म।

अर्थात सर्वाणि पूर्वकर्माणि का सही अर्थ यह है कि, जितने पूर्व प्रारब्ध कर्मों का फल यह शरीर मिला था, उन सबका फल यहां इस अंतिम शरीर में आत्मा भोग लेता है। उसके बाद उसका मोक्ष हो जाता है। सारे संचित कर्म तो कभी भी समाप्त नहीं होते। क्योंकि एक शरीर में पूरे बचे हुए कर्मों का फल भोगना असंभव है। और बिना फल भोगे कर्म नष्ट हो जाएं, यह अन्याय है। ईश्वर ऐसा अन्याय कर नहीं सकता।

प्रमाण (6) - आर्योद्देश्यरत्नमाला संख्या 53 में - प्रवाह से अनादि पदार्थ --- जो कार्य जगत्, जीव के कर्म, और जो इनका संयोग वियोग है, ये तीन परंपरा से अनादि हैं।

महर्षि दयानंद जी ने इस वाक्य में, जीव के कर्मों को प्रवाह से अनादि स्वीकार किया है। इसका अर्थ होता है कि जीव के कर्म सदा से चलते आ रहे हैं और सदा ही चलते रहेंगे। अर्थात आत्मा पिछले कर्मों का फल भोगता रहेगा और आगे नए-नए कर्म कर्ता रहेगा। कुछ मात्रा में कर्म सदा बचे ही रहेंगे। कर्मों का शेष शून्य (बैलेंस जीरो) कभी भी नहीं होगा। यदि सारे कर्म समाप्त हो जाएँ, तो जीव के कर्मों को "प्रवाह से अनादि" नहीं कह पाएंगे। इस प्रकार से "सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं", ऐसा मानना , महर्षि जी के इस सिद्धांत से विरुद्ध होने से ग़लत है।

प्रमाण (7) - यजुर्वेद के अध्याय 40 मंत्र 15 के भाष्य के भावार्थ में महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने लिखा है - किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता। ऐसा मानकर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें।

यहां स्पष्ट ही है, कि बिना फल भोगे कर्म कभी नष्ट नहीं होगा। मोक्ष में जाने से पहले यदि सारे कर्म समाप्त हो गए, ऐसा माना जाए, तो भी यह पक्ष महर्षि दयानंद जी के इस वचन से विरुद्ध होने से ग़लत है। क्योंकि एक शरीर में पूरे बचे हुए कर्मों का फल भोगना असंभव है।

क्रमशः ...

लेखक -
स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

विषय - मुक्ति के पूर्व आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है, या शेष रहता है ?

[पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्वपक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)]

प्रमाण (8) - योग दर्शन के सूत्र 2/13 में कहा है, "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।।" फिर इस सूत्र के व्यास भाष्य में लिखा है, "सत्सु क्लेशेषु कर्माशयो विपाकारंभी भवति, नोच्छिन्नक्लेशमूलः। ..... आगे लिखा है, "तथा क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति, नापनीतक्लेशो, न प्रसंख्यानदग्धबीजक्लेशभावो वेति।।"

इस सूत्र एवं भाष्य का अभिप्राय यह है कि जब तक अविद्या आदि पांच क्लेश विद्यमान रहेंगे, तभी तक अविद्या आदि क्लेशों से उत्पन्न सकाम कर्माशय, जाति आयु भोग

फल को देगा। यदि तत्त्वज्ञान की सहायता से अविद्या आदि क्लेश नष्ट कर दिए गए, तो इस स्थिति में वह अविद्या आदि क्लेशों से उत्पन्न कर्माशय, होते हुए भी जाति आयु भोग फल को उत्पन्न नहीं करेगा। इससे पता चलता है कि कर्माशय तो विद्यमान रहेगा, परंतु वह फल नहीं देगा। तो कब फल देगा? मुक्ति से लौट कर देगा। इससे पता चलता है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए अविद्या आदि पाँच क्लेशों का नाश होना अनिवार्य है, सारे कर्म समाप्त होना अनिवार्य नहीं है।

प्रमाण (9) - योग दर्शन के सूत्र 2/13 के ही व्यास भाष्य में लिखा है,

"तस्माज्जन्मप्रायणान्तरे ....
प्रधानोपसर्जनभावेनावस्थितः ....एकमेव जन्म
करोति।।"

अर्थात् जन्म से मृत्यु के बीच में जितने भी कर्म किए जाते हैं, उनके दो भाग हो जाते हैं । एक प्रधान कर्म और दूसरा गौण कर्म । तो प्रधान कर्मों से अगला जन्म मिलता है। इससे भी यह बात निकलती है कि गौण कर्म, हमारे कर्मों के खाते में जमा हो जाते हैं। इससे भी सिद्ध होता है

कि सारे कर्म समाप्त नहीं होते। हमेशा कुछ न कुछ कर्म हमारे खाते में जमा रहते ही हैं, जिन्हें संचित कर्म के नाम से कहा जाता है।

प्रमाण (10) - योग दर्शन के सूत्र 2/4 के व्यास भाष्य में लिखा है। "अतः क्षीणक्लेशः कुशलश्चरमदेह इत्युच्यते।।" अर्थात जिस योगी के अविद्या आदि पाँच क्लेश पूरी तरह समाप्त हो गए हैं, उसका नाम कुशल है। वह चरमदेह अर्थात् अंतिम शरीर वाला है। इस शरीर के मरने पर अब उसका मोक्ष हो जाएगा।।

यहां भी मोक्ष प्राप्ति के लिए क्लेशों का विनाश होना शर्त बताई गई है, कर्म समाप्त होना नहीं।

प्रमाण (11) - योग दर्शन के सूत्र 2/10 के व्यास भाष्य में लिखा है। "ते पञ्च क्लेशा दग्धबीजकल्पा योगिनश्चरिताधिकारे चेतसि प्रलीने सह तेनैवास्तं गच्छन्ति।।" अर्थात जब योगी के पांच क्लेश दग्धबीज हो जाते हैं, अर्थात पूरी तरह से नष्ट हो जाते हैं । तब उसका चित्त भी नष्ट हो जाता है। और उस योगी का मोक्ष हो जाता है।

यहां पर भी मोक्ष प्राप्ति के लिए क्लेशों का विनाश होने की बात बताई गई है, कर्मों का नाश होने की नहीं। इसलिए कर्म तो फिर भी बचे रहेंगे।

प्रमाण (12) - योग दर्शन के सूत्र 3/55 के व्यास भाष्य में लिखा है। "क्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावः।।" अर्थात जब योगी के क्लेश समाप्त हो जाते हैं तब उसके सकाम कर्मों का फल उसको तत्काल नहीं मिलता। इससे भी सिद्ध होता है कि कर्म तो हैं, परंतु जाति आयु भोग फल उसे अभी नहीं मिलेगा, अभी तो मोक्ष मिलेगा। तो सभी जगह यही बताया जा रहा है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए क्लेश नष्ट होना आवश्यक है, कर्मों का नाश होना आवश्यक नहीं है। कर्म तो बचे ही रहेंगे। अन्यथा मुक्ति से जब आत्मा लौटेगा तो बिना कर्म के मुफ्त में शरीर मिलेगा। ऐसा मानने से ईश्वर अन्यायकारी हो जाएगा। जो कि ऋषियों की मान्यता के विरुद्ध है।

प्रमाण (13) - सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में महर्षि जी ने पृष्ठ 89 पर लिखा है, "किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता। परंतु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता।" इस वचन से यह सिद्ध

होता है कि वैदिक ऋषियों का यह मत है कि, जो भी कर्म करेंगे उसका फल अवश्य भोगना ही पड़ेगा। चाहे देर में ही मिले। बिना फल भोगे कोई भी कर्म नष्ट नहीं होता।

यदि यह माना जाए कि मोक्ष से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं, तो इस बात का इस वचन से विरोध होगा। क्योंकि सारे कर्म तो एक जन्म में व्यक्ति भोग नहीं सकता। तब बिना फल भोगे ही कर्म नष्ट हुए मानने पड़ेंगे। जो कि इस प्रमाण से विरुद्ध है।

इसलिये यह मानना गलत है कि "मुक्ति में जाने वाले आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है, तथा कोई भी कर्म शेष नहीं रहता।" सत्य तो यही है कि "मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है। और उसी बचे हुए कर्माशय से ही, मुक्ति से लौटने पर पहला मनुष्य जन्म मिलता है।

"क्रमशः ...

लेखक -
स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

विषय - मुक्ति के पूर्व आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है या शेष रहता है ?

[पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्व पक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)]

प्रमाण (14) - सांख्य दर्शन के अध्याय 5 सूत्र 2 "नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः।।" में कहा है कि - फल की प्राप्ति ईश्वर की मनमर्जी से नहीं होती। बल्कि कर्म के आधार पर ईश्वर फल देता है, बिना कर्म के फल नहीं देता।

"मुक्ति से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो गए," ऐसा मानने पर, जब आत्मा मुक्ति से लौटेगा तो बिना कर्म के ईश्वर कैसे फल देगा? इसलिए यह मानना गलत है, कि मुक्ति से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं।

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

प्रमाण (15) - पूर्वपक्षी ने कहा कि - जैसे माता पिता अपने बच्चों को मुफ्त में खिलाते पिलाते और संपत्ति देते हैं। ऐसे ही ईश्वर भी हमारा माता पिता है, वह भी माता-पिता के समान मुफ्त में हमें फल दे दे। वह हमसे कर्म करवा के ही फल क्यों देवे?

तो इसके उत्तर में सिद्धांत पक्ष की ओर से सांख्य सूत्र 5/6 में कहा है, कि - "न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात्।।" अर्थात् बिना राग के मुफ्त में फल देना असंभव है। माता-पिता जो अपने बच्चों को मुफ्त में खिलाते पिलाते और संपत्ति देते हैं , वे इसलिए देते हैं, क्योंकि उन्हें अपने बच्चों से राग होता है। ईश्वर को किसी आत्मा से कोई राग तो है नहीं। इसलिए वह बिना कर्म के किसी को फल नहीं देगा। कर्म के आधार पर ही देगा।

प्रमाण (16) - फिर सांख्य सूत्र 5/7 में कहा है, कि - "तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः।।" अर्थात्यदि ईश्वर में भी मनुष्यों के समान राग माना जाए, तो फिर वह नित्य मुक्त नहीं कहलाएगा। जबकि सब वैदिक शास्त्रों में ईश्वर को नित्य मुक्त कहा है। इसलिए ईश्वर में राग होना संभव नहीं है। और जब राग नहीं है, तो बिना कर्म के, मुफ्त में वह आत्माओं को फल नहीं देगा। इसलिए मुक्ति से लौटते समय कुछ न कुछ कर्म खाते में बचे हुए होते ही हैं,

जिनके आधार पर ईश्वर, मोक्ष से लौटने वाली आत्माओं को शरीर देगा।

प्रमाण (17) - न्याय दर्शन अध्याय 1 आह्निक 1 के सूत्र 2 में भी जन्म का कारण प्रवृत्ति अर्थात सकाम कर्म को बताया है। कर्म के बिना जन्म नहीं होता। सूत्र इस प्रकार से है।

"दुखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये
तदनन्तरापायादपवर्गः।।"

इससे भी पता चलता है कि जब मुक्ति से आत्मा लौटेगा, तो बिना कर्म के उसको शरीर या जन्म नहीं मिल पाएगा।

प्रमाण (18) - पूर्वपक्षी लोग मुंडकोपनिषद् 2/2/8 का एक वचन प्रस्तुत करते हैं, जिसमें लिखा है कि - "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।" इसका अर्थ वे लोग ऐसा करते हैं कि - परमात्मा का दर्शन समाधि में कर लेने पर योगी के सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं।।

सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में मुंडकोपनिषद् का यही वचन महर्षि दयानंद जी ने उद्धृत किया है। इसके अर्थ में महर्षि जी लिखते हैं -- "जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञान रूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा, जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उस में निवास करता है।"

यहाँ महर्षि जी ने कहा है कि "दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।" महर्षि दयानंद जी का तात्पर्य ऐसा है कि, वे कह रहे हैं "जब योगी, समाधि में ईश्वर की अनुभूति कर लेता है, तब वह आगे जीवन में दुष्ट कर्म नहीं करता।" यदि "मोक्ष में जाने से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं," ऐसा ही महर्षि जी का सिद्धांत होता, तो केवल "दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।" ऐसा क्यों लिखते? दोनों का नाम लिखते कि "पाप और पुण्य सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं।।

उपनिषद के इस वाक्य का ऐसा अर्थ निकालना, कि "मोक्ष में जाने से पहले सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं" यह तो ऋषियों के सिद्धांत और न्याय के विरुद्ध है।

क्रमशः ...

लेखक -
स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

मुक्ति के पूर्व आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है या शेष रहता है ?

[पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्व पक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)]

प्रमाण (19) - सत्यार्थ प्रकाश 9वाँ समुल्लास पृष्ठ 199 पर महर्षि जी लिखते हैं , "जो ईश्वर अंत वाले कर्मों का अनंत फल देवे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाए।"

महर्षि दयानंद जी के इस वाक्य से निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं कि -- ईश्वर न्यायकारी है। न्यायकारी का अर्थ होता है -- वह बिना कर्म किए फल नहीं देता। और कर्म करने पर फल अवश्य देता है। जब मोक्ष का कर्म फल समाप्त हो जाएगा, तब ईश्वर उस आत्मा को वापस संसार में अवश्य भेजेगा। क्योंकि सीमित कर्मों का अनन्त फल देना अन्याय है।

"मुक्ति में जाने से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो गए," जब ऐसा मान लिया जाएगा। तो मुक्ति से लौटने पर बिना कर्म के ईश्वर को फल के रूप में शरीर देना पड़ेगा। यह अन्याय सिद्ध होगा। ईश्वर अन्यायकारी है नहीं। इसलिए यह सिद्धांत मानना ठीक नहीं है।

प्रमाण (20) - सत्यार्थ प्रकाश 9वाँ समुल्लास पृष्ठ 199 पर महर्षि जी लिखते हैं , "प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीर आदि पदार्थ और साधन परिमित हैं। पुनः उसका फल अनंत कैसे हो सकता है?"

इस वचन में भी कहा है कि जब कर्म सीमित हैं, तो फल भी सीमित होगा। मोक्ष फल पूरा भोग लेने पर संसार में लौटना अनिवार्य होगा। संसार में लौटते समय जीवात्मा को, यदि बिना कर्मों के ईश्वर फल देगा, तो यह अन्याय होगा।

यदि आप कहें कि, "ईश्वर न्यायकारी है, वह बिना कर्म के फल नहीं देगा," तो इसका अर्थ यह बनेगा, कि "यदि मुक्ति में जाने से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो गए," तो लौटते समय अब जब खाते में कर्म हैं ही नहीं, तो आत्मा संसार में वापस आएगा ही नहीं। वह सदा मुक्ति में रहेगा। ऐसी स्थिति में फिर अन्याय होगा। क्योंकि बिना कर्म के ईश्वर, उसे सदा के लिए मोक्ष फल भी नहीं दे सकता। अर्थात् सदा मोक्ष में भी नहीं रख सकता। तो यह मानना ठीक नहीं है, कि मुक्ति में जाने से पूर्व सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं। यदि कर्म बचे रहेंगे, तभी न्यायपूर्वक, ईश्वर उन बचे हुए कर्मों के आधार पर, उस आत्मा को, संसार में लौटा कर शरीर या जन्म देगा।

प्रमाण (21) - जब आत्मा जीवन्मुक्त होगा, उस काल में अर्थात सारे क्लेश नष्ट करने के बाद और मृत्यु होने से पहले के समय में, अनजाने में जो गलतियां करेगा, कुछ पांव के नीचे चींटिया मरेंगी और चलने फिरने उठने बैठने खाने-पीने आदि में जो कुछ भी अनजाने में

गलतियाँ होंगी, उन कर्मों का फल भी तो भोगना बाकी है। इसलिए मुक्ति में जाने से पूर्व, वे कर्म भी तो बिना भोगे समाप्त नहीं होंगे, बचे ही रहेंगे। इसलिए यह सोचना और मानना गलत है, कि "मोक्ष में जाने से पहले सारे कर्म समाप्त हो जाएंगे।" सत्य तो यह है कि इन बचे हुए कर्मों का फल मोक्ष से लौट कर भोगना पड़ेगा।

प्रमाण (22) - सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में पृष्ठ 205 पर लिखा है --प्रश्न -- "परमात्मा ने प्रथम ही से जिस के लिए जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है।"

उत्तर - "उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो तो वह भी अपराधी अन्यायकारी होवे।"

इस उत्तर में महर्षि जी ने स्वीकार किया है, कि ईश्वर बिना कर्म के फल नहीं देता। यदि बिना कर्म के फल देवे, तो ईश्वर भी अपराधी और अन्यायकारी होगा। इसलिए यही सिद्ध होता है कि मोक्ष से लौटते समय जीवात्मा के कर्म बचे हुए होने चाहिएँ।

प्रमाण (23) - योग दर्शन पाद 2 सूत्र 12 के व्यास भाष्य में अंतिम पंक्ति में लिखा है, "क्षीणक्लेशानामपि नास्त्यदृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयः।।" अर्थात जिन योगियों के अविद्या आदि 5 क्लेश क्षीण अर्थात नष्ट हो गए हैं, उनको भी तुरंत अगले जन्म में कर्मों का फल नहीं मिलेगा। इसका अर्थ हुआ कि "क्योंकि उनके क्लेश खत्म हो चुके हैं, इसलिए अगला जन्म नहीं मिलेगा। उनके बचे हुए कर्मों का

फल मुक्ति से लौटकर मिलेगा।" बिना फल भोगे कर्म नष्ट माना जाए, तो वही कृतहानि दोष आएगा और ईश्वर अन्यायकारी माना जाएगा। ईश्वर अन्यायकारी है नहीं। इसलिए इस पंक्ति से यह अर्थ निकालना ठीक नहीं है, कि "मोक्ष में जाने से पहले सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं।"

प्रमाण (24) - योग दर्शन पाद 4 सूत्र 30 के व्यास भाष्य में लिखा है, "तल्लाभादविद्यादयः क्लेशाः समूलकाषं कषिता भवन्ति। कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति।।" अर्थात "धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होने पर उस योगी के सारे क्लेश कारण सहित नष्ट हो जाते हैं , और सारे पाप पुण्य कर्माशय भी कारण सहित नष्ट हो जाते हैं।"

इस पंक्ति से लोगों को बहुत भ्रांति होती है कि उस योगी के सारे संचित कर्म समाप्त हो जाते हैं और उसके अविद्यादि क्लेश भी पूरी तरह से नष्ट हो चुके हैं।

वास्तव में यहां शब्द भले ही ऐसे हैं, परंतु इन शब्दों से ऐसा तात्पर्य निकालना अनुचित है। क्योंकि इससे अगले 31वें सूत्र में, "ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्।।" यह स्वीकार किया है कि - उस योगी का थोड़ा कार्य अभी बचा हुआ है। इस प्रकार से 30वें सूत्र में, जब उसके क्लेश और कर्म कारण सहित सब समाप्त हो चुके थे, तो फिर यह कहना कि अभी काम बचा हुआ है। यह तो परस्पर विरोध होगा। ऋषि के वचन में विरोध नहीं हो सकता। इसलिए इस 30वें सूत्र में यह अर्थ करना चाहिए कि "क्लेशों के विनाश का कार्य लगभग समाप्त

हो चुका है, कुछ कार्य बाकी है।" तभी सूत्रों की परस्पर संगति बैठेगी । और दूसरी बात यह है, कि "सारे कर्म कारण सहित समाप्त हो गए," इस कथन का यह अर्थ नहीं लेना चाहिए, कि पूर्व संचित कर्म समाप्त हो गए. क्योंकि यदि सारे संचित कर्म समाप्त मान लिए जाएंगे, तो पूर्वोक्त कृतहानि दोष आएगा।

तो फिर इसका क्या अर्थ लिया जाए? यही अर्थ लिया जाएगा , कि "योगी भविष्य में सकाम कर्म नहीं करेगा। इस प्रकार से उसके कर्म नष्ट मानें।" यही अर्थ ऋषियों के सिद्धांत के अनुकूल है।

लोग कहते हैं, यहां तो साफ लिखा है। हमारा उत्तर है, जी हाँ, साफ लिखा है, उसके बाद भी शब्द कुछ और होते हैं, अभिप्राय कुछ और होता है।

उदाहरण के लिए -- (1) - न्यायदर्शन के 1/1/9 सूत्र के वात्स्यायन भाष्य में बिल्कुल साफ लिखा है कि "आत्मा सर्वज्ञ है।" क्या आप जीवात्मा को ईश्वर के तुल्य सर्वज्ञ मानेंगे, या अर्थ बदलेंगे?

(2) - सत्यार्थ प्रकाश के 9वें समुल्लास में पृष्ठ संख्या 207 पर महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने मुक्त आत्मा को पूर्ण ज्ञानी लिखा है। क्या पूर्ण ज्ञानी का अर्थ आप ईश्वरवत् सर्वज्ञ स्वीकार करेंगे, या अर्थ बदलेंगे?

यदि इन स्थलों पर आप अर्थ बदलेंगे, तो योगदर्शन 4/30 के भाष्य में भी अर्थ बदलना होगा। इसी प्रकार से और भी जितने स्थल ऐसे होंगे, जहां उन शब्दों का अभिधावृत्ति से अर्थ सिद्धांत के अनुकूल

नहीं बैठता, तो वहां सभी जगह लक्षणावृत्ति करके अर्थ बदलने होंगे। क्योंकि निरुक्तकार कहते हैं, "अर्थनित्यः परीक्षेत, न संस्कारमाद्रियेत, अर्थस्य मुख्यत्वात्।।" अर्थात् सदा अर्थ को प्रधानता देनी चाहिए, अर्थ विरुद्ध होने पर धातु प्रत्यय को छोड़ना पड़े, तो गौण मानकर छोड़ देना चाहिए। क्योंकि शास्त्रों में अर्थ ही मुख्य होता है, इसलिए।

क्रमशः ...

लेखक -
स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 06

[पहला पक्ष - मुक्ति से पूर्व सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है। कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मुफ्त में मिलता है। (हम इसे पूर्व पक्ष के नाम से कहेंगे।)

दूसरा पक्ष - मुक्ति से पूर्व कुछ कर्माशय शेष रहता है, जिसके आधार पर मुक्ति से लौटकर आत्मा को पहला शरीर या जन्म मिलता है, मुफ्त में नहीं। (हम इसे उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे। हमारा पक्ष यही है।)]

प्रमाण (25) - यदि मुक्ति में जाने से पहले सारे कर्म समाप्त हो जाएँ, तो मुक्ति से लौटते समय आत्मा के पास कर्म तो हैं नहीं। बिना कर्म के ही उसे ईश्वर पहला शरीर देगा। तब प्रश्न होगा कि उसे पहला शरीर कौन सा मिलेगा? (महर्षि दयानंद जी ने तो ऋग्वेद मन्त्र 1/24/2 के भाष्य में बताया था कि पापपुण्य तुल्य होने से सामान्य मनुष्य का शरीर मिलेगा।) परंतु पूर्वपक्ष के आधार पर, जब खाते में कर्म हैं ही नहीं, तो प्रश्न होगा कि मुक्ति से लौटने वाली आत्मा को कौन सा शरीर या जन्म मिलेगा? यदि पूर्वपक्ष कहे, कि सामान्य मनुष्य का शरीर मिलेगा? तो कारण बताना होगा कि बिना कर्म के सामान्य परिवार में जन्म क्यों मिलेगा? किसी ऊंचे विद्वान के घर क्यों नहीं शरीर/जन्म मिलेगा? या पशु पक्षी का शरीर/जन्म क्यों नहीं मिलेगा? पूर्वपक्ष के पास , सामान्य मनुष्य का शरीर मिलने

का, या कोई भी जन्म मिलने का, कोई आधार या हेतु नहीं बन पाएगा।

यदि यह माना जाए कि मुक्ति से लौटकर सीधा विद्वान के घर जन्म मिलेगा। तब तो वह आत्मा जल्दी से ऊंची योग्यता बना कर 5/7/10/20 जन्म में ही पुरुषार्थ करके वापस मोक्ष में चला जाएगा। ऐसी स्थिति में, जब सभी आत्माएँ मुक्ति से लौट कर आती हैं, तो सभी आत्माएँ 5/7/10/20 जन्म में मोक्ष में चली जाएंगी। तब प्रश्न यह होगा, कि पशु पक्षी कीड़ा मकोड़ा वृक्ष वनस्पति समुद्री जीव आदि शरीरों में कौन सी आत्मा जाएगी? इस प्रश्न का उत्तर पूर्वपक्ष नहीं दे पाएगा। क्योंकि सभी आत्माएँ ही तो मोक्ष से ही लौटी हुई हैं। सब एक जैसी हैं। सब की सब 10/20 जन्म में मोक्ष प्राप्त कर लेंगी।

प्रमाण (26) -

पूर्वपक्ष -- मोक्ष से लौटने पर एक बार ईश्वर, आत्मा को बिना कर्म के फल = सामान्य मनुष्य का शरीर दे देगा। इसे अपवाद मान लेंगे। आगे वह आत्मा जैसा जैसा कर्म करेगा, ईश्वर उसे वैसा वैसा फल देता रहेगा।

उत्तरपक्ष -- यदि मोक्ष से लौटने पर ईश्वर बिना कर्म के ही आत्मा को पहला जन्म दे देगा और इसे अपवाद मान लिया जाए। तो फिर पहली सृष्टि मानने में क्या आपत्ति है? फिर तो यह भी मानना पड़ेगा कि पहली बार ईश्वर ने सृष्टि बनाई, और बिना कर्म के ही सब जीवात्माओं को फल = शरीर दे दिया। फिर आगे जिस-

जिस आत्मा ने जैसा जैसा कर्म किया, उसको वैसा वैसा फल ईश्वर न्याय पूर्वक देता रहा। ऐसा मानने में सृष्टि प्रवाह से अनादि नहीं रहेगी। और ऐसा मानना ऋषियों के विरुद्ध होगा। क्योंकि सब ऋषि सृष्टि को "प्रवाह से अनादि" मानते हैं। महर्षि दयानंद जी ने इस विषय में आर्योद्देश्यरत्नमाला सिद्धांत संख्या 53 में कार्य जगत अर्थात सृष्टि को प्रवाह से अनादि लिखा है। और "बिना कर्म के फल देना", यह अन्याय भी तो होगा। इस अपवाद को मानने पर, ईश्वर अन्यायकारी भी माना जाएगा।

प्रमाण (27) - पूर्वपक्ष -- मोक्ष से लौटने पर ईश्वर सभी आत्माओं को एक समान अर्थात सामान्य मनुष्य का जन्म देगा, तो इसमें अन्याय कहां हुआ? यदि ईश्वर किसी को कुत्ता गधा बकरी वृक्ष आदि बनाए, किसी को मनुष्य बनाए, तब तो अन्याय होगा।

उत्तरपक्ष -- यदि मोक्ष से लौटने पर ईश्वर बिना कर्म के ही सब आत्माओं को पहले जन्म में पशु पक्षी वृक्ष आदि न बनाकर, सामान्य मनुष्य का शरीर देवे, ऐसी स्थिति में ईश्वर ने सबको समान फल दिया, यह न्याय है। आपको इसमें अन्याय नहीं दिखता!

हम समान फल देने को अन्याय नहीं कह रहे। हम तो यह कह रहे हैं कि बिना कर्म के सबको फल दिया, यह अन्याय है।

और यही अन्याय सृष्टि का प्रारंभ मानने पर भी होगा। प्रमाण संख्या 26 के अनुसार जब ईश्वर पहली सृष्टि बनाएगा, तब भी तो बिना कर्म के ही सबको फल = शरीर देने पड़ेंगे। तब तो एक और

दूसरा अन्याय भी मानना पड़ेगा कि बिना कर्म के ईश्वर को पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति मनुष्य आदि अलग-अलग प्रकार के शरीर देने पड़ेंगे। तब क्या ईश्वर सबको मनुष्य बनाएगा? यदि सबको मनुष्य बनाएगा, तो सृष्टि नहीं चलेगी। क्योंकि बिना फल फूल शाक सब्जी के मनुष्य खाएगा क्या? और जीवित कैसे रहेगा? इसलिए प्रथम सृष्टि मानने पर भी, ईश्वर पर यह दो प्रकार के अन्याय करने का दोष आएगा।

प्रमाण 28 - सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में पृष्ठ 178 पर तीसरे नास्तिक के पक्ष का उत्तर देते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती जी लिखते हैं --

जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो बिना कर्म किए ईश्वर फल क्यों नहीं देता?

महर्षि दयानंद जी के इस कथन में यह बात स्पष्ट है, कि ईश्वर बिना कर्म किए फल नहीं देता. इसलिए आपका कथन महर्षि दयानंद जी के विरुद्ध होने से गलत है, कि "मुक्ति से लौटने पर पहला शरीर ईश्वर उस आत्मा को बिना कर्म के दे देगा।"

अतः महर्षि दयानंद सरस्वती जी आदि ऋषियों के अनुसार यही मानना ठीक है, कि पाप पुण्य तुल्य होने के कारण, मुक्ति से लौटकर सबको सामान्य मनुष्य का जन्म मिलेगा।

इसलिये यह मानना गलत है कि मुक्ति में जाने वाले आत्मा का सारा कर्माशय समाप्त हो जाता है, तथा कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। न्याय दर्शन में बताई 54 गलतियों में से यह पक्ष "अज्ञान

नामक निग्रहस्थान" है। जिसका उल्लेख न्याय सूत्र 5/2/18 में किया गया है।।

सत्य तो यही है कि मुक्ति में जाने वाले आत्मा का कर्माशय शेष रहता है। और उसी बचे हुए कर्माशय से ही, मुक्ति से लौटने पर पहला मनुष्य जन्म मिलता है।

(यह लेख समाप्त हुआ।)

विनम्रतापूर्वक धन्यवाद।

लेखक -

स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।